साहित्यिक पत्रकारिता का योगदान

आर. जयचंद्रन

साहित्यिक पत्रकारिता का योगदान

आर. जयचन्द्रन

अनुक्रम

पहला अध्याय

साहित्यिक पत्रिकाएँ और प्रतिबद्धात्मक लेखन 5

दूसरा अध्याय

द्विवेदी युग में साहित्यिक पत्रकारिता का स्वरूप 28

तीसरा अध्याय

प्रेमचंद युग में साहित्यिक पत्रकारिता 53

चौथा अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर रचना विधान और मानक साहित्यिक पत्रिकाएँ 82

पाँचवाँ अध्याय

नवलेखन प्रयोगधर्मिता और साहित्यिक पत्रकारिता 102

उपसंहार 137

संदर्भ-ग्रंथ सूची 139

पहला अध्याय

साहित्यिक पत्रिकाएँ और प्रतिबद्धात्मक लेखन

साहित्यिक पत्रिका : ऐतिहासिक दृष्टि

साहित्यिक पत्रकारिता की परंपरा एक प्रकार से साहित्यिक पत्रिकाओं व लघु पत्रिकाओं की परंपरा ही है। साहित्यिक पत्रिकाएँ साहित्य के इतिहास का ज्वलंत दस्तावेज होती हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं की एक गतिशील परंपरा चल रही है और उनके प्रकाशन का एक निजी वैशिष्ट्य भी रहा है। जातीय उत्थान, भाषा, विकास, नए प्रयोग, मानव मूल्यों की निर्मित युगीन चेतना सभी का समन्वित रूप हम साहित्य में देख सकते हैं। इन पत्रिकाओं में लेखकीय प्रतिभा का काम सामाजिक व साहित्यिक गतिविधियों को पहचानना होता है और प्रत्येक साहित्यकार या लेखक, संपादक के सहयोग से उनकी संभावनाओं की सूचना देता है। साहित्य की रचना और प्रेषणीयता का आधार मानसिक वृत्तियाँ और जीवन की सहज अनुभूतियाँ हैं। साहित्यिक मूल्यवत्ता, जीवनानुभूतियों एवं जीवन मूल्यों से अलग एवं विशिष्ट कभी नहीं होती है बल्कि ये दोनों परस्पर पूरक की भूमिका अदा करते हैं। साहित्य में जिन जीवन-मूल्यों की सैद्धांतिक विवेचना होती है, उन्हीं जीवन-मूल्यों को साहित्यिक पत्रिका व्यावहारिक आयाम प्रदान करती है। इनका मूल लक्षण, भावों और विचारों का सटीक एवं व्यापक संप्रेषण है। मानव मात्र में एकता एवं भ्रातृत्व की भावना स्थापित करना ही साहित्य का लक्ष्य है और यही लक्ष्य लेकर हर युग की पत्रिकाएँ चलती रही है। लोकादर्श की स्थापना ही साहित्य का लक्ष्य है ऐसा प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक रस्किन ने कहा है। इस कथन के अनुसार हम ऐसा कह सकते हैं कि साहित्यकार समाज का एक अंग है और इसलिए उसका साहित्यिक लेखन समाज के परिप्रेक्ष्य में आत्माभिव्यक्ति का माध्यम होती है।

वैसे साहित्यिक रचना काफी चिन्तन-मनन के परिणामस्वरूप उद्भूत होता है। परन्तु पत्रकारिता की रचनाधर्मिता अलग परिप्रेक्ष्य की होती है। जब पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ, उसका प्रचार-प्रसार बढ़ा तो पत्रकारों का यह दायित्व लोक रुचि का विषय बनने लगा। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रचलित साहित्य सृजन की शैली में इतनी नूतनता थी कि वह पुराने ढंग की साहित्यिक शैली को समाप्त करके ही रही। पत्र-

पत्रिकाओं में प्रांजल, परिष्कृत एवं परिमार्जित शैलियों का वर्चस्व होता है। इसलिए पत्रिकाओं में किसी शुष्क और दुरूह विषय पर भी लिखा गया लेख सरल एवं सुगम हो जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि बार-बार निकलने एवं बन्द होने वाली साहित्यिक पत्रिकाओं ने ही आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास का सही अर्थों में निर्माण किया है क्योंकि भारतेन्दु युग से आज तक एक बार बन्द होकर पुन: दूसरे नाम से निकलने वाली पत्रिकाओं के पीछे सच्ची रचनाधर्मी इच्छाशक्ति निहित रही है। साहित्यिक पत्रिका के पृष्ठों पर साहित्य अपनी प्रखरता और तेजस्विता के साथ चुनौती के रूप में उभरा है। यह निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि व्यक्ति ने जब-जब साहित्य के माध्यम से समाज, संस्कृति और मानवता के पक्ष में कुछ कहना चाहा तब-तब समाचार-पत्रों से भी बेहतर माध्यम के रूप में साहित्यिक पत्रिका का ही सहारा लेना पड़ा था। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि साहित्यिक पत्रिका को एकायामी रूप में परिभाषित करना नामुमकिन है। फिर भी उक्त परिभाषा ने ऐसे वातावरण की सृष्टि की है जिस से नयी लेखकीय प्रतिभाओं का विकास हुआ।

साहित्यिक पत्रिकाओं की सामान्य विशिष्टताएँ

मानवतावाद को प्रमुखता देते हुए ही आज की साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रतिष्ठा प्राप्त कर रही हैं। यहाँ चमत्कार, दिखावा या मात्र मनोरंजन न होकर साहित्य के माध्यम से जीवन मूल्यों की व्याख्या और मनुष्य के वर्तमान तथा भविष्य का चिन्तन सामने आया है। स्वतंत्रता पूर्व की साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन के पीछे का लक्ष्य पाठकों या जनता में जागृति लाना था। राष्ट्रीय चेतना के भाव से संयुक्त होकर उसका स्वरूप निखरा था, इसलिए तो 'सरस्वती', 'इन्दु', 'मतवाला', 'चाँद', 'हंस', 'रूपाभ' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं ने जो रचनाएँ दीं वे साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ होते हुए स्वतंत्रता के संघर्ष में भी प्रेरक बनी। इन पत्रिकाओं में साहित्य लेखन के सार्थक पक्ष को उभारने की प्रवृत्ति बराबर विद्यमान थी और इन पत्रिकाओं की रचनाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान को स्वतंत्रता संघर्ष से जोड़ने की प्रवृत्ति भी निहित थी।

स्वतंत्रता पूर्व युग की साहित्यिक पत्रिकाएँ प्राय: सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मुद्दों को एकत्रित कर पेश करने वाली ज्ञानदायक उच्चस्तरीय पत्रिकाएँ थीं। 'सरस्वती', 'हंस', 'देवनागर', 'इन्दु' आदि इसके उदाहरण

हैं। सभी उम्र के स्तरीय पाठकों की आकांक्षाओं की पूर्ति इन पत्रिकाओं के द्वारा हो सकी थी।

समय के प्रवाह के साथ राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक परिदृश्यों में आने वाले परिवर्तनों ने पत्रकारिता की भूमिका को नए विकल्पों से जुड़ने के लिए बाध्य किया। आजादी की प्राप्ति के बाद हमारी पत्रकारिता की दिशा ही परिवर्तित होने लगी। साहित्यिक पत्रकारिता के सामने नयी चुनौतियाँ खड़ी होने लगीं। आजादी के प्रथम दशकों में फिल्म, फिल्मी संगीत आदि ने साहित्यिक पत्रकारिता पर प्रतिकूल असर डाला था। धीरे-धीरे व्यावसायिक पत्रकारिता सनसनीखेज पैदा करने वाली पत्रिकाएँ अपराध और खोजबीन से जुड़ी हुई पत्रिका ने जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया।

तहकीकात से जुड़ी हुई इस प्रकार की पत्रिकाओं ने जासूसी मनोवृत्ति को जाग्रत किया और स्तर से गिरे हुए मनोरंजन को प्रोत्साहन दिया। आगे जैसे-जैसे विज्ञान का विकास हुआ, दृश्य-श्रव्य माध्यमों के तूफान प्रभाव ने शुद्ध साहित्यिक आस्वादन की स्थितियों को और उन पर आधारित पत्रिका को बुरी तरह से प्रभावित किया।

बीसवीं सदी के प्रथम चरण में हिन्दी प्रदेश में दो प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थी-राजनीतिक और साहित्यिक। सन् 1900 ई. से 1920 ई. तक प्रत्येक वर्ष कोई न कोई पत्रिका अवश्य प्रकाशित होती रही है। इस अवधि में प्रकाशित राजनीतिक पत्रिकाएँ निम्नांकित हैं :

1. हितवाणी - 1904
2. नृसिंह - 1907 (साप्ताहिक)
3. अभ्युदय - 1907 (साप्ताहिक)
4. कर्मयोगी - 1909 (साप्ताहिक)
5. मर्यादा - 1909 (मासिक)
6. प्रताप - 1913 (साप्ताहिक)

इन पत्रिकाओं में नृसिंह, मर्यादा, कर्मयोगी अधिक चर्चित रही।

'नृसिंह' ने स्वराज्य को हमारा जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयास में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। उसने देश के लोगों में आत्माभिमान और कर्मतंत्र में प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी "आओ समस्त देशवासियों,

हम लोग उपनिवेश और इसके इंग्लैंड की वस्तुओं का बहिष्कार करे जिससे उन्हें जान पड़े कि हिन्दुस्तानी मरे मुर्दे नहीं है। हम लोग दिखा दें कि हम आत्माभिमानी हैं और तुम्हें तुम्हारे पाप कर्मों का फल चखाने के लिए कटिबद्ध है।"[1] आर्थिक कठिनाइयों की मजबूरी के कारण एक वर्ष के बाद इस पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया। उधर 'कर्मयोगी' नौ साल तक चलता रही, सरकार ने जमानत माँग कर इस पत्रिका का प्रकाशन बंद कर दिया था। 'मर्यादा' ने इन दोनों पत्रिकाओं की अपेक्षा राजनीतिक से ज्यादा अपना तेवर साहित्यिक बना लिया था इसलिए दोनों ने नवजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य किया। इस काल की साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रिकाओं में निम्नांकित पत्रिकाएँ प्रमुख थीं।

1. सरस्वती - 1900 ई.
2. सुदर्शन - 1900 ई.
3. समालोचना - 1902 ई.
4. देवनागर - 1907 ई.
5. इन्दु - 1909 मासिक
6. प्रभा - 1913 मासिक

इनमें 'सरस्वती' और 'देवनागर' ऐसी पत्रिकाएँ थीं जो प्राय: सभी विषयों पर लेख प्रकाशित करती थीं। डॉ. कैलाश नारद ने सरस्वती और प्रभा की तुलना करते हुए लिखा है : " 'प्रभा' जिस तरह प्रकाशित हुई, वह हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में अन्यतम है। 'सरस्वती' यदि साहित्य के प्रति गहन मनस्विता की प्रतीक थी तो निस्संदेह प्रभा को अप्रतिहत मुक्ति के लिए बेचैन वाणी की मुखर अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।"[2]

वैसे आधुनिक युग की पत्रिकाएँ विशेषकर उच्च मध्यवर्ग की आकांक्षाओं की पूर्ति की ओर अधिक ध्यान देती है। व्यावसायिकता की होड़ अधिक होने के कारण आज की साहित्यिक पत्रिका श्रेणीबद्ध होने लगी है क्योंकि इसी से इनके अस्तित्व के संकट का समाधान हो सकता है।

---

[1] हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका, पृ. 116

[2] मध्य प्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास, सं. विजय दत्त श्रीधर, पृ. 63